

अनेकान्तवाद : सामाजिक जीवन का आधार



रोहित कुमार जैन

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

जैन दर्शन का एक प्रमुख सिद्धान्त अनेकान्तवाद है जो कि सत्य और अहिंसा की भूमिका पर स्थापित तीर्थंकर महावीर द्वारा दिया गया सार्वभौमिक सिद्धान्त है। जिसमें सर्वधर्म समभाव, लोक कल्याण की भावना निहित है। आज वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक हर क्षेत्र में एकान्तिक दृष्टिकोण से कई वाद-विवाद विघटन हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में अनेकान्तवाद अत्यन्त उपयोगी सिद्धान्त है। वस्तु में अनेक धर्मों का होना निश्चित है फिर उनमें से किसी एक धर्म का आग्रह रखना तो एकान्त दृष्टि कही जाएगी। इसके विपरीत सभी धर्मों का एक साथ अपेक्षा भेद से, समान रूप से, न्याय करना अनेकान्त दृष्टि कही जाएगी। यह अनेकान्त दृष्टि अनेकता में एकता और एकता में अनेकता को दर्शाता है। सभी वादों-विवादों, दुराग्रहों, हठाग्रहों को सुलझाने में यह सक्षम है। एकान्त के विष को निष्प्रभावी करने वाला यह अमृत अभिमान एवं दुराग्रह की व्याधियों को दूर भगाता है। यह ऐसी संजीवनी है जिसे सिर्फ शास्त्रों तक सीमित न रखते हुए व्यवहार में लाने की कोशिश करनी चाहिए। यदि हम ऐसा करने में कामयाब हो जाते हैं तो निश्चित ही चारों तरफ शांति व्याप्त हो जाएगी अन्यथा सिर्फ क्लेश, विवाद, संघर्ष ही बचे रहेंगे। आग्रहपूर्ण या एकांगी दृष्टि से कुंठित मानसिकता ही झलकती है। जैन धर्म का मौलिक सिद्धान्त अनेकान्तवाद सामाजिक और व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण है। सामाजिक जीवन में मतों में भिन्नता होना स्वाभाविक है लेकिन उस भिन्नता के साथ परस्पर एक दूसरे को समभाव, आदर के साथ स्वीकार करना ही अनेकान्तवाद है। इस अनेकान्तवाद सिद्धान्त के कारण ही सापेक्षता, समन्वय, सह-अस्तित्व, सहिष्णुता, स्वतंत्रता, समभाव जैसे सामाजिक जीवन के आधार बिंदुओं को प्राप्त किया जा सकता है।

संकेताक्षर—अनेकान्तवाद, सापेक्षता, समन्वय, सह-अस्तित्व, सहिष्णुता, स्वतंत्रता, भेदाभेदत्व

प्रस्तावना

जैन दर्शन का एक प्रमुख कथन है 'परस्परपग्रहो जीवनाम्' जो कि संस्कृत भाषा में लिखे गए जैन ग्रंथ, तत्त्वार्थ सूत्र का एक श्लोक है इसका अर्थ होता है—'जीवों के परस्पर में उपकार हैं।' सभी जीव एक दूसरे पर आश्रित हैं। यह आश्रय एवम उपकार सामाजिक जीवन में जब ही रह पाएगा जब हमारी दृष्टि अनेकान्तिक होगी। अनेकान्तवाद का सिद्धान्त सामाजिक जीवन के सहचर्य, संतुलन की मान्यताओं को पुष्ट करता है। यह चिंतन को एक नया स्वरूप देता है जिसमें विरोध होते हुए

भी सभी के अस्तित्व को स्वीकार किया जाता है। जैन दर्शन की यह मान्यता है कि विरोध वस्तुतः बाहरी है, जो वस्तु के अनेक धर्मों (स्वभाव) प्रति सीमित समझ के कारण होता है। सामाजिक जीवन में मनुष्य अपनी सीमित दृष्टि या सापेक्षिक दृष्टि के कारण सामाजिक जीवन के किसी एक पक्ष को ही देख पाता है। एक पक्ष को देख पाना उसकी सीमितता का द्योतक है लेकिन अनेक पक्षों को अस्वीकार करना उसके ज्ञान का अभाव है। अनेकान्तवाद व्यक्ति के सामाजिक जीवन में ज्ञान के अभाव के इस पदों को उठाता है। यदि हम संतुलित

सामाजिक जीवन की बात करे तो उसके लिए कुछ आवश्यक तत्व है जिसमें समन्वय, सह-अस्तित्व, समानता, सहयोग, परस्पर सहानुभूति, स्वन्त्रता आदि प्रमुख है जिनके पोषक तत्व के रूप में जैन दर्शन की अनेकांतवादी दृष्टि है। जैन दर्शन के प्रमुख कथन 'जियो और जीने दो' एवं 'अहिंसा परमो धर्मः' को अनेकान्तवाद सामाजिक जीवन में चरितार्थ करता है।²

अनेकान्तवाद का दार्शनिक पक्ष

शाब्दिक दृष्टि से 'अनेकान्त' शब्द 'अनेक' एवं 'अन्त' इन दो शब्दों से मिलकर बना है। 'अनेक का अर्थ है एक से अधिक एवं अन्त का अर्थ है धर्म या गुण।³ वस्तु में रहे हुए विभिन्न गुणों को यहाँ धर्म का नाम दिया है। अतः यह कहा जा सकता है कि वस्तु के अनेक गुणों का एक साथ होना ही अनेकान्त कहलाता है। अधिकतर लोग अनेकान्त की यही परिभाषा करते हैं लेकिन जैन धर्म व चिंतन में अनेकान्त का अर्थ एक व्यापक रूप लेता है। जैन धर्म के अनुसार वस्तु में जो भी धर्म विद्यमान है वे सारे अपने प्रतिपक्षी धर्मों के साथ रहते हैं, जिसे अनेकान्तवाद कहते हैं। अनेकान्तवाद ही सभी जैन सिद्धान्तों का आधार है।

व्यक्ति अपनी सीमित दृष्टि के कारण वस्तु के एक ही विशिष्ट गुण को एक समय में जान सकता है। ऐसी हर दृष्टि को नय कहा जाता है। उस दृष्टि के द्वारा वस्तु के जिस गुण की अभिव्यक्ति होती है, वह भी नय कही जाती है। लेकिन दृष्टिभेद के कारण वस्तु के विभिन्न गुणों के संदर्भ में मतभेद हो सकता है। जैन चिंतन में नय के द्वारा अनन्त धर्मात्मक वस्तु के एक समय में एक ही गुण की अभिव्यक्ति हो सकती है। इस ज्ञान को वस्तु का स्वरूप नहीं मानना चाहिए। उस गुण के अलावा और भी गुण वस्तु में होता है। सभी अंशों का समन्वित स्वरूप ही वस्तु है।

वस्तु के विरोधी युगल

वस्तु को विरोधी युगलों का सह-अस्तित्व या समवाय कह सकते हैं। अनेकान्त ने इस सत्य का दर्शन कर उनमें रहे हुए समन्वय के सूत्र खोजे। इससे दृष्टियाँ स्पष्ट होकर जैन दर्शन को भलीभाँति समझने का अवसर प्राप्त होता है। जैन आगमों ने वस्तु में निहित विरोधी युगलों का उल्लेख किया है।

सत्त्वासत्त्व—विश्व का हर एक पदार्थ यदि स्वरूप में सत् है तो परस्वरूप से असत् भी है। वह कथंचित् सत् है, तो

कथंचित् असत्। उसे सर्वथा सत् या असत् नहीं कह सकते। इसलिए कहा है—

“स्वमस्ति स्वरूपेण पररूपेण नास्ति च”⁴

यहाँ यह समझाया गया है कि हर द्रव्य अपने स्वरूप चतुष्टय से सत् और पररूप चतुष्टय से असत् है। ऐसा न माने तो स्व और पर में भेद नहीं रहेगा। इसलिए लोकव्यवस्था के लिए सत्त्वासत्त्व नियम हर पदार्थ पर लागू होता है।

एकत्व-अनेकत्व: जैन सिद्धान्त में हर वस्तु एक रूप भी है, अनेक रूप भी। स्थानांग सूत्र में इस बात की समीक्षा की गयी है—

‘एगे आया।’ ‘अणेगे आया।’⁵

आत्मा को हम एक भी कह सकते हैं और अनेक भी कह सकते हैं। उपयोग स्वरूप से सभी आत्मा एक समान है जो अभेद विवक्षा से या संग्रह दृष्टि से कथन किया जाता है। भेद विवक्षा से आत्माएँ अनेक हैं। जब हम संग्रह नय की दृष्टि से देखते हैं तो विश्व की अनन्त आत्माओं में ‘आत्मत्व’ की एकता झलकती है। इसी एकता को लेकर ‘एगे आया’ कहा है। परन्तु जब भेद दृष्टि से देखा जाता है तो व्यक्ति-व्यक्ति की भिन्नता के कारण हर आत्मा अलग अलग दिखती है। इसलिए ‘अणेगे आया’ कहकर आत्मा को अनेक कहा गया है।

द्रव्यार्थिक नय की प्रधानता से पदार्थ में एकत्व गुण परिलक्षित होता है परन्तु पर्यायार्थिकनय की प्रधानता से देखने पर पदार्थ में अनेकत्व गुण की प्रतीति होती है। द्रव्य की अपेक्षा यदि कोई वस्तु एक है उसी समय पर्याय की अपेक्षा से वह अनेक भी है। एक द्रव्य की कई पर्यायें होती हैं जैसे एक मानव की बाल-युवा-वृद्ध कई पर्यायें होती हैं। इस प्रकार से यह सिद्ध होता है कि वस्तु में एकत्व और अनेकत्व दोनों विद्यमान हैं।

भेदाभेदत्व

द्रव्य और पर्याय, गुण और गुणी, कर्ता और क्रिया आदि में जैन दृष्टि के अनुसार कथंचित् भेद है तो कथंचित् अभेद। यदि इनमें सर्वथा भेद स्थापित होता तो अमुक द्रव्य और अमुक पर्याय के साथ या अमुक गुण और अमुक गुणी के साथ संबंध कैसे घटित किया जा सकता है और यदि इनमें सर्वथा अभेद स्थापित किया जाता है तो कर्ता क्रिया आदि में पृथक व्यवहार नहीं देख पाते हैं अतएव ये सर्वथा अभिन्न नहीं कह सकते। अतएव पदार्थ में भेदाभेदत्व ही घटित है, सर्वथा भेद या अभेद

नहीं। इस प्रकार पदार्थों का यह स्वभाव है कि वे अनेकान्त दृष्टि के द्वारा ही सम्यक् रूप से गृहीत हो सकते हैं।⁶

त्रयात्मक पदार्थ

द्रव्य का लक्षण बताते हुए तत्त्वार्थसूत्र में कहा है—

“सद्व्यलक्षणम्”⁷

अर्थात् जो सत् है, वह द्रव्य है। द्रव्य का लक्षण सत् है। पदार्थ का लक्षण करते हुए कहा है—“उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्”⁸ अर्थात् जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त है, वह सत् है। इस प्रकार ‘द्रव्य’ लक्ष्य है तो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त सत् द्रव्य का लक्षण है। अपनी जाति को बिना छोड़े जो नयी अवस्था प्राप्त होती है, वह है—‘उत्पाद’, पुरानी अवस्था का त्याग है—‘व्यय’ और अनादि पारिणामिक भाव रूप अन्वय बना रहता है वह है—‘ध्रौव्य’।

पदार्थ की यह स्थिति होती है कि उसमें पूर्व पर्याय का नाश, नये पर्याय की उत्पत्ति हर दम चलती रहती है, फिर भी वह पदार्थ अपनी ध्रुवता की मौलिकता को बनाए रखता है। यह वस्तु तत्त्व के सम्यक् स्वरूप का द्योतक है। इस प्रकार वस्तु की त्रयात्मकता सिद्ध हो जाती है। हर समय बदलकर भी कभी नहीं बदलना और कभी नहीं बदलकर भी हर समय बदलते रहना प्रत्येक द्रव्य का मूल स्वभाव है। प्रत्येक वस्तु द्रव्यार्थिकनय से कभी नहीं बदलता और पर्यायार्थिकनय से प्रतिसमय बदलता रहता है। द्रव्य में गुण और पर्याय अवश्यमेव होते हैं। इसलिए कहा है—

द्रव्यं पर्याय वियुतं, पर्यायाः द्रव्य वर्जिताः।

क्व कदा केन किंरूपा दृष्टा मानेन केन वा।⁹

पर्याय से रहित द्रव्य और द्रव्य से रहित पर्याय को कभी भी किसी भी रूप में या किसी भी प्रमाण से नहीं देखा है। द्रव्य और पर्याय कभी भी अलग नहीं रह सकते। इस तरह से पदार्थ का स्वरूप अनेकान्तात्मक सिद्ध होता है।

सामाजिक जीवन में अनेकान्त के सूत्र

एक पर्याय या एक विचार को समग्र मान लेना एकांगी दृष्टिकोण होगा वहीं उस पर्याय या विचार को सापेक्ष मानना अनेकान्तवादी दृष्टिकोण होगा। समाज का विकास अनेकान्त दृष्टि के आधार पर ही हो सकता है। निरपेक्ष दृष्टि के प्रयोग से अस्तित्व का निर्धारण होता है तो सापेक्ष दृष्टि के प्रयोग से संबंधों का

निर्धारण होता है। यह अनेकान्तवादी प्रयोग है। उसके कई सूत्र हैं—

सापेक्षता—वर्तमान युग में कई खोजें हुई हैं जिज्ञासाएँ प्रबल हुई हैं। मनुष्य का ज्ञान विकसित होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में सापेक्षता को समझना अत्यन्त आवश्यक है। जीवन के हर एक पक्ष में सापेक्षता को समझना जरूरी हो गया है। सापेक्षता के बिना जीवन व्यवहार नहीं चल सकता। एक जाति दूसरी जाति के सापेक्ष रहकर ही जी सकती है, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के सापेक्ष होकर ही कार्य करता है, एक संप्रदाय दूसरे संप्रदाय के सापेक्ष रहकर ही सापेक्ष हितों को सिद्ध कर सकता है। विरोध या वर्गभेद आदि की सापेक्षता के संदर्भ में समीक्षा करने पर परस्पर विवाद और भेद समाप्त हो सकता है। सापेक्षता का आधार लेकर समन्वय को भी स्थापित कर सकते हैं। अन्यथा सिर्फ हिंसा और संघर्ष, तनाव और विरोध ही शेष रह जाते हैं। सापेक्षता के माध्यम से अहिंसा का सिद्धान्त स्थापित किया जा सकता है।

समन्वय—दो भिन्न प्रतीत होने वाले दो वस्तु धर्मों में एकता की खोज करना समन्वय कहलाता है। वस्तु धर्म न तो सर्वथा भिन्न है न ही सर्वथा अभिन्न। इस अभिन्नता से ही समन्वय स्थापित किया जाता है। सृष्टि संतुलन का सिद्धान्त भी समन्वय के द्वारा ही सिद्ध किया जाता है। मैं अकेला हूँ इस सिद्धान्त से तो समन्वय नहीं स्थापित किया जा सकता, बल्कि मेरे अलावा अन्यो का भी अस्तित्व है और हमारे बीच संबंध है, इस सिद्धान्त को ध्यान में रखकर ही समन्वय का सिद्धान्त और स्वास्थ्य जीवन यात्रा संभव हो सकता है। सृष्टि संतुलन की व्याख्या भी इसी आधार में किया जा सकता है।

भारत एक विस्तृत देश है, जहाँ कई पर्वत, मैदान व नदियाँ हैं। एक नदी बहुत सारे प्रदेशों में हो कर बहती है। ऐसी स्थिति में यदि समन्वय की दृष्टि न हो तो हर पल विवादों में ही झुलसते रहना पड़ेगा। यहाँ व्यवहार की सुगमता के लिए अभेद व्यवस्था को अपना ही पड़ता है। जहाँ समन्वय की अनेकान्त दृष्टि न हो वहाँ खतरों का जाल बिछने में देर नहीं लगती। ऐसी उदार दृष्टि से ही आदमी शांति से सह-अस्तित्वपूर्वक वास कर सकता है। लोगों में कई प्रकार के भेद पाए जाते हैं। मान्यता हो या विचार, रूचि हो या स्वभाव या संवेग ही हो, इन सब के भिन्न-भिन्न आधारों पर अलग-अलग सम्प्रदायों का जन्म होता है, लोगों में भिन्न-भिन्न चिंतन पैदा होते हैं, अलग-अलग

लोगों में अलग-अलग आदतें बनती हैं, अलग-अलग व्यवहार देखने को मिलते हैं। यदि मानव की दृष्टि इस तरह के भेद में ही उलझी रहे तो पर्यावरण में कहीं भी शांति नहीं रह सकती। विश्व में यदि समन्वय की सापेक्ष दृष्टि का प्रसार होगा तो किसी प्रकार के ऊँच नीच का भेद, नस्ल का भेद न होकर सिर्फ मानवता की लहर चलेगी, क्योंकि बाहर से भिन्न-भिन्न दिखाई देने वाली दुनिया अन्दर से जुड़ी हुई रहती है। अनेकता में छिपी हुई एकता को पहचानेंगे तो झगड़ों का मूल समाप्त हो जाएगा और एक संतुलित पर्यावरण का निर्माण हो जाएगा।

सह-अस्तित्व—जहाँ अस्तित्व होता है, वहाँ उसका प्रतिपक्ष अवश्य होता है। प्रतिपक्ष के बिना लक्षण को निर्धारित भी नहीं कर सकते। जहाँ चेतन पदार्थ हैं तो वहाँ अचेतन पदार्थ भी अवश्य हैं। चेतन के बिना अचेतन और अचेतन के अभाव में चेतन की कल्पना नहीं कर सकते। इन दोनों में सह-अस्तित्व मौजूद है। आत्मा चेतन है तो शरीर अचेतन। आत्मा और शरीर एक साथ रहकर ही कार्य करते हैं। सत्वासत्त्व, नित्यानित्य, सामान्य-विशेष, एकत्व-अनेकत्व, भेद-अभेद ये सारे परस्पर में विरोधी तत्त्व हैं फिर भी इनमें सह-अस्तित्व गुण पाया जाता है। एक ही पदार्थ में ये विरोधी युगल एक साथ रहते हैं। दार्शनिक जगत् में सह-अस्तित्व का सिद्धान्त जितना महत्त्व लिया हुआ है उतना ही व्यावहारिक जगत् में इसकी उपयोगिता नजर आती है। व्यक्ति में जाति, सम्प्रदाय, रुचि, आदतें, स्वभाव, विचार, संवेग, संस्कार, चिंतन, मान्यताएँ आदि भिन्न-भिन्न होते हैं, इनमें विरोध भी होता है परन्तु सह-अस्तित्व का नियम इन सबको साथ में लेकर चलता है। भिन्न-भिन्न राजनैतिक दलों में सह-अस्तित्व से ही समस्याएँ हल हो पाती हैं। सिर्फ एकान्तवाद तो विवादों को ही जन्म दे सकती है और परिस्थितियों को जटिल बना देती हैं। एकांतवाद दृष्टिकोण मित्रता में भी विरोध की भूमिका बना डालती है। इसलिए सह-अस्तित्व के सिद्धान्त को मानव मूल्य के रूप में भी स्वीकारा गया है।

प्रकृति में नानात्व दिखाई पड़ता है और यही उसका सौंदर्य है। यदि सारे पेड़-पौधे, सारे पुष्प एक जैसे प्रतीत होंगे तो सौंदर्य नहीं रहेगा। इस प्रकार यदि लोग अपने जीवन प्रणाली में सह-अस्तित्व का सिद्धान्त को ढालने का प्रयास करें तो जीवन सुगम बन जाता है।

दार्शनिक क्षेत्र में भी अद्वैतवाद और द्वैतवाद दोनों ही वाद प्रचलित हैं। एक के बिना दूसरे की व्याख्या नहीं हो सकती।

अद्वैत के बिना एकता और द्वैत के बिना अनेकता को व्याख्यायित नहीं की जा सकती। दोनों का सह-अस्तित्व होता है। चेतन और अचेतन इन दोनों के सहअस्तित्व से ही हम सत्ता तक पहुँच जाते हैं। व्यक्ति और समाज दोनों का सहअस्तित्व स्वीकार कर के ही व्यवस्था, नियम, कानून बनाए जाएँ तो उनका अनुपालन सहज बन सकता है। सहअस्तित्व अभेद प्रधान दृष्टि है। उसी के आधार पर समाज निर्माण होता है।¹⁰

समानता—तारतम्य मनुष्य की प्रकृति है। रुचि की भिन्नता, विचारों की भिन्नता, जाति, सम्प्रदाय आदि के संदर्भ में भिन्नता पायी जाती है। अनेकविध भाषाएँ बहुविध अनेकता में एकता का सूत्र पिरोने का कार्य, समानता नामक सिद्धान्त कराता है। असमानता के आधार पर पृथक्करण की नीति को न अपनाकर मौलिक अधिकारों की समानता को स्वीकार करना चाहिए।

अनेकता और एकता में समानता स्थापित किये बिना समाज की प्रतिभा प्रतिष्ठित नहीं हो सकती। इस समानता की प्रणाली का दार्शनिक आधार है अनेकान्त। अनेकान्त की यह घोषणा रही है कि हर पदार्थ कथंचित् सदृश है, कथंचित् विसदृश अर्थात् किसी अपेक्षा से सभी पदार्थ समान है तो किसी अपेक्षा से सभी पदार्थ असमान है। सदृशता को आधार बनाकर एकता पुष्ट की जाती है तो विसदृशता को आधार बनाकर व्यक्ति की विशेषताओं का बोध करा सकते हैं इसलिए इन दोनों की सीमा का निर्धारण करना जरूरी है। क्योंकि एकांतिक समानता का आग्रह योग्य प्रतिभाओं को दूर कर देता है। असमानता का एकांतिक आग्रह समाज की अखंडता को बाधित कर देता है। इसलिए समानता के साथ असमानता का सामंजस्य स्थापित करने का दर्शन विकसित कर अनेकान्त की सापेक्ष दृष्टि समाधान प्रदान कर सकती है।

जहाँ समानता है वहाँ असमानता का होना स्वाभाविक है। यदि हम सब में भारतीयता एक गुण समान है तो जाति, धर्म, भाषा आदि की असमानता से इंकार नहीं कर सकते। समानता एक सत्य है तो असमानता भी एक सत्य है। ऐसी स्थिति में सापेक्षता से ही हल प्रदान किया जा सकता है।

सहयोग—हर मनुष्य का अस्तित्व दूसरे मनुष्य के साथ जुड़ा हुआ है। वह समाज कभी भी मजबूत नहीं हो सकता, जहाँ की समाज व्यवस्था में सहयोग सूत्र न हो। सामाजिक शक्तियों की कार्य दिशा यह हो कि वे उत्थानोन्मुख व्यक्ति को सहयोग प्रदान करें और जब उसके पैर लड़खड़ाने लगे तो उसको

पुनः गतिशील बना दे। सहयोग के गूढार्थ को हृदयंगम करते हुए ही पुरुषार्थ करना चाहिए और राग द्वेष की कुलषितता से अपने को दूर रखना चाहिए। वही समाज श्रेष्ठ है जो सबका कल्याणकारी है। दुनिया में व्यक्ति का स्वार्थ एक दूसरे से बंधे हुए है। जब संतुलन गड़बड़ाता है तब अव्यवस्था फैलती है। लेकिन समाज व्यवस्था में सहयोग जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक असहयोग भी है। आजादी की लड़ाई के समय अंग्रेजी सलतनत का असहयोग करना पड़ा था। असहयोग का आन्दोलन चला था क्योंकि यह भारत की स्वतंत्रता के लिए जरूरी था। इसलिए बुराई के साथ असहयोग उतना ही जरूरी है जितना की अच्छाई के साथ सहयोग जरूरी है।

सहानुभूति—समाज में सहानुभूति की बहुत बड़ी जरूरत होती है। किसी भी प्राणी के सुख दुःख की अनुभूति यदि दूसरे को भी होती है तभी राष्ट्र, समाज और परिवार अच्छी तरह से चल सकता है। सामूहिकता के साथ प्रतिकार करने पर दुःख खत्म हो जाता है। एकांगी दृष्टिकोण तो आर्थिक विषमता, शारीरिक अस्वास्थ्य, मानसिक अशांति, भावनात्मक असंतुलन और यहाँ तक कि पर्यावरण को भी दूषित करने का हेतु बन जाता है। सहानुभूति द्वारा समस्याओं को सुलझाना आसान हो सकता है। वक्रता को मिटाकर भावनात्मक संतुलन और व्यवस्था में समन्वयता स्थापित किया जा सकता है। अहं और लोभ को नियंत्रित कर युद्ध की वृत्ति को भी समाप्त कर सकते हैं। मानवीय मूल्यों को व्यापक बनाए बिना विरोधियों को शांत भी नहीं कर सकते।

सहिष्णुता—समाज में सहिष्णुता का भी बहुत बड़ा स्थान है। समाज में उच्च वर्ग को चाहिए कि वे निम्न वर्ग का आदर करें। उनका तिरस्कार नहीं करें। एक-दूसरे के साथ सहिष्णुता रखना जरूरी है। सहिष्णुता से समस्याएँ समाप्त हो सकती हैं। इसका विकास सामाजिक संदर्भ में हुआ है। जो सभी जीवों को अपने में और स्वयं को भी अन्य जीवों में देखता है वह अपनी अनुभूति के कारण किसी से घृणा नहीं करता है। घृणा और विद्वेष के तत्त्व स्वतः समाप्त हो जाते हैं। सहिष्णुता शब्द करुणा का प्रतीक न होकर सामाजिक अधिकार का प्रतीक है। जैन दर्शन के अनुसार जो सहिष्णु नहीं वे मुक्त नहीं हो सकते। सहिष्णुता के माध्यम से वैयक्तिकता से ऊपर उठकर सामाजिक एकता के लिए अभेदनिष्ठा का सर्वोत्कृष्ट तात्त्विक आधार स्थापित किया है। विश्व में यह अभेदनिष्ठा ही एकत्व

की चेतना और समता का आधार बना हुआ है। सामाजिक जीवन की संकल्पना के व्यापक संदर्भ सहिष्णुता में पाए जाते हैं। जीवन व्यवहार में, वाणी व विचारों में जब सहिष्णुता का स्थान होगा तभी उचित रीति से कार्य सम्पन्न हो सकता है।

स्वतंत्रता की सीमा—कोई व्यक्ति परतन्त्र की जिन्दगी नहीं जीना चाहता। सब आजादी चाहते हैं। मनुष्य या पशु पक्षी कोई भी परतन्त्र नहीं रहना चाहते। लेकिन यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि स्वतंत्रता भी सापेक्ष होना अनिवार्य है। समाज में व्यक्ति को हर परिस्थिति में सापेक्षता से जीना पड़ता है। स्वतंत्रता का बहुत मूल्य है, लेकिन उस हद तक ही यह स्वीकार्य है जहाँ तक दूसरों को बाधा नहीं पहुँचाए। किसी भी व्यक्ति को इतनी भी स्वतंत्रता नहीं हो सकती कि वह अन्य लोगों की उपेक्षा करें। इससे जीवन सुचारु रूप से चल नहीं सकता। संयमित स्वतंत्रता बहुत मूल्यवान है। आधुनिक सभ्यता के विकास का संबंध व्यक्ति की स्वतंत्रता को सुस्थिर करता है। वही व्यक्ति स्वतंत्र कहा जाता है जो स्वेच्छा से अपने पर अनुशासन कर सकता हो। इच्छाओं को वश में किये बिना व्यक्ति स्वेच्छाकारी तो बन जाता है पर सही मायने में स्वतंत्र नहीं बन सकता। मनुष्य अपने मन को काबू में रखते हुए स्वयं पर अनुशासन कर सकता है। सभी अपनी भावना प्रकट करना चाहते हैं, लेकिन अपने भाव प्रकट करते समय सापेक्ष होना बहुत जरूरी है अन्यथा एक शब्द से भी भयंकर युद्ध हो सकता है। अपनी अभिव्यक्ति से जब सापेक्षता हट जाती है तो विवाद होना निश्चित हो जाता है। निरंकुश अभिव्यक्ति, अन्य व्यक्ति पर एक तीखा प्रहार करती है। वचनों से तो घाव इतने गहरे हो सकते हैं कि बड़े-बड़े महाभारत खड़े हो जाते हैं। इसलिए व्यक्ति को बोलते और लिखते वक्त संयम रखना चाहिए। यहाँ तक कि समझने में भी सापेक्षता का व्यवहार आवश्यक ही करना चाहिए। कोई भी व्यक्ति यदि किसी भी सम्प्रदाय को चोट पहुँचाता है, किसी जाति पर प्रहार करता है, किसी के विचारों पर घाव करता है तो वह अपनी स्वतंत्रता का सदुपयोग नहीं बल्कि दुरुपयोग ही करता है।

सब लोगों की स्वतंत्रता का आदर करना अनेकान्तवाद से ही मुमकिन है। स्वतंत्रता की एक सीमा होती है, जिसका अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। एक मर्यादा में रहकर ही व्यक्ति को स्वतंत्रता का मूल्यांकन करना चाहिए।

सामाजिक समरसता—वैचारिक सहिष्णुता के लिए अनेकान्तवाद के अवलम्बन की आवश्यकता है। सच्चा अनेकान्तवादी किसी भी समाज या व्यक्ति से द्वेष नहीं करता। मानव की यह विचित्र मनोवृत्ति है कि वह समझता है कि जो वह कहता है वही सत्य है और जो वह जानता है वही ज्ञान है क्योंकि इसके भीतर अहंकार छिपा हुआ है। अनेकान्तवाद से यही संकेत किया जाता है कि आचार और विचार के लिए सद्विचार, सहिष्णुता एवं सत्प्रवृत्ति का सहयोग आवश्यक है। परपक्ष को सुनो, उसकी बातों में भी सत्य समाया हुआ है। अनेकान्तवाद सिर्फ विचार नहीं है, आचार-व्यवहार भी है जो अहिंसा और अपरिग्रह के रूप में विकसित हुआ है। जैन दर्शन का यह सिद्धांत न केवल वस्तु स्वरूप को सिद्ध करने में, अपितु वर्तमान की अनेक समस्याओं का समाधान में भी प्रासंगिक है। हमारे जीवन के समागत सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक आदि समस्यायें इस सिद्धांत के प्रयोग से सहज रूप से हल हो जाती हैं।¹¹

पारिवारिक जीवन में इस सिद्धांत की उपयोगिता अथवा प्रासंगिकता को हम इस रूप में समझ सकते हैं कि आज के युग में परिवार में तनाव चरम पर है। संबंधों में खटास पल-पल में हो जाती है। पति-पत्नी के संबंधों में श्रेष्ठता का अहम इतना अधिक है कि सात जन्मों का संबंध सात वर्षों तक निभाना कठिन हो गया है। यदि दोनों को अनेकान्तवाद का व्यावहारिक ज्ञान कराया जाये तो समस्या समाधान में परिवर्तित हो जायेगी। धार्मिक उन्माद का ज्वार तो आज चरम पर है। श्रेष्ठता की होड़ में एक धर्म दूसरे धर्म के प्रति सपने में भी अच्छा नहीं सोच सकता। श्रेष्ठता की स्थापना हेतु हिंसक साधनों को भी स्वीकार कर लेता है। ऐसे वातावरण में यदि हम अनेकान्तवाद का सफल प्रयोग करें कि द्रव्य दृष्टि से हम सभी एक हैं, आत्मा है, जीव है। कोई छोटा-बड़ा नहीं है। जब हम सब एक हैं कोई छोटा-बड़ा नहीं है तो झगड़ा किस बात का। सब मिलकर रहें, अहिंसात्मक रूप से रहें।¹²

सामाजिक जीवन में जात-पात का बीज भी इस हद तक फैल चुका है, जिसको नियंत्रित करना असंभव तो नहीं पर कठिन अवश्य प्रतीत होता है। इस कठिनता को भी अनेकान्तवाद से सरलता से बदला जा सकता है। जातिवाद में जातीय-निम्नता और उच्चता की चर्चा होती है। मेरी जाति उच्च है और अन्य जाति निम्न है। इस जहर को अनेकान्तवाद के उस अमृत से

दूर कर सकते हैं, जिसमें द्रव्य अपेक्षा से उच्चता एवं निम्नता रूप पर्यायें विषय ही नहीं बनती है। अतः द्रव्य अपेक्षा से सभी समान हैं और यह समानता ही जातिगत असमानता को दूर करती है।

व्यवहारिक जीवन में तो पग-पग पर इसकी प्रासंगिकता है। एक पुरुष में पिता, पुत्र, चाचा, फूफा जैसी पदवियों का समावेश अनेकान्तवाद से ही संभव होता है। यद्यपि पिता-पुत्र परस्पर विरोधी है परंतु अपने पुत्र की अपेक्षा पिता एवं अपने पिता की अपेक्षा पुत्र जैसे विरुद्ध पदवियों का समावेश किया जा सकता है।¹³ सामाजिक समरसता की दृष्टि से अनेकान्तवाद जाति प्रथा लिंग भेद पारिवारिक वैमनस्यता, शोषण आदि मुक्ति दिलाता है। इस प्रकार अनेकान्तवाद जटिल समस्याओं के समाधान का मूल मंत्र है। यदि हम इस सिद्धांत का सही तरीके से पालन करें तो हमारी पारिवारिक, सामाजिक एवं धार्मिक समस्याओं का समाधान सरलता से हो सकता है। यह सह-अस्तित्व, वसुधैव कुटुम्बकम्, जीओ और जीने दो की भावना को विकसित करता है जिससे मानवीय गुणों की वृद्धि होती है। जीवन का आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास इसी के द्वारा हो सकता है।

निष्कर्ष

वस्तुतः व्यावहारिक हिंसा से स्वयं को दूर रखने में अनेकान्तवाद अमूल्य योगदान है। अनेकान्तवाद एक ऐसा सूत्र है जिसके द्वारा दो विरोधी तत्त्व के स्वरूप को समझा जाता है। यह पूरा जगत् विरोधी तत्त्वों से पूर्ण है। चेतन-अचेतन, जीवन-मरण, सुख-दुःख, धनी-निधन आदि विरोधी युगलों का साथ रहना सहज है जिनके बिना हमारा कोई अस्तित्व नहीं है। लोक है तो अलोक भी है, गति है तो स्थिति भी है। इन सभी विरोधी तत्त्वों का एक साथ रहना जीवन का क्रम है। मानव के हर व्यवहार में अनेकान्तात्मक चिन्तन की आवश्यकता है, क्योंकि इसके बिना सामाजिक जीवन-यापन नहीं किया जा सकता। इसलिए जैनागमों में कहा भी है 'परस्परोग्रहो जीवानाम्'। व्यक्ति एक दूसरे पर निर्भर रहकर ही कार्य करते हैं। एक के अस्तित्व की कल्पना दूसरे के बिना नहीं हो सकती। सभी एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। मनुष्य-मनुष्य को परस्पर जोड़ने, सामाजिक व्यवस्था का निर्माण, सामाजिक संतुलन की स्थापना प्रेमपरक समाज जीवन की स्थापना में अनेकान्तवाद का सिद्धान्त हर युग में प्रासंगिक है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सामाजिक

जीवन के आधार बिन्दु सापेक्षता, समन्वय, सह अस्तित्व, सहिष्णुता, स्वतंत्रता, सहयोग आदि बिना अनेकान्तवादी दृष्टि के अकल्पनीय है।

संदर्भ सूची

1. शास्त्री, कैलाशचन्द्र, तत्त्वार्थ सूत्र, श्री जैन दिवाकर, साहित्य पीठ, इन्दौर, 1987, पृ.सं. 46
2. जैन, छगनलाल, जैनों का संक्षिप्त इतिहास, दर्शन, व्यवहार एवं वैज्ञानिक आधार, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2013, पृ.सं. 119
3. डागा, तारा, जैन धर्म की रूपरेखा, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2017, पृ.सं. 44
4. आचार्य नानेश, जिणधम्मो, श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर, 2004, पृ.सं. 250
5. स्थानांग सूत्र, मुनि मधुकर, श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, 2013, पृ.सं. 3
6. आचार्य नानेश, पूर्वोक्त पृ.सं. 254
7. भारिल्ल, हुकमचन्द, तत्त्वार्थमणिप्रदीप, पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, जयपुर, 2014, पृ.सं. 225
8. उपर्युक्त, पृ.सं. 225
9. आचार्य नानेश, जिणधम्मो, पूर्वोक्त, पृ.सं. 256
10. जैन, जयश्री, जैन, पी.सी., जैन सामाजिक एवं सांस्कृतिक चिन्तन, सरस्वती उच्चस्तरीय अध्ययन एवं अनुसंधान संस्थान, जयपुर, 2013, पृ.सं. 306
11. भारिल्ल, हुकमचन्द, अनेकान्त और स्याद्वाद, पण्डित टोडरमल ट्रस्ट, जयपुर, 2017, पृ.सं. 16
12. जैन, सागरमल, जैन दर्शन में तत्त्व और ज्ञान, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2016, पृ.सं. 239
13. जैन, आर.के., जैन धर्म और विश्वशान्ति, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, प्राणी मित्र संस्थान, जोधपुर, 2007, पृ.सं. 62